अनजाना या अज्ञात

रजि० नं० बी, ४४४८

हरिजनसेवक

दो आना

भाग १०

सम्पादक : प्यारेलाल

अंक १९

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

अहमदाबाद रविवार, ता० १६ जून, १९४६

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६,
विदेशमें रु० ८; शि० १४; डॉलर ३

हफ़्तेवार ख़त

उनकी लायब्रेरी

उन लोगोंके सिवा जो गांधीजीके बिलकुल पास रहते हैं, बहुत कम ऐसे हैं, जो यह जानते हों कि गांधीजी अपने पाखानेको लायब्रेरी कहते हैं। यह सिर्फ़ नामकी ही बात नहीं, असलमें भी ऐसा ही है। उन्होंने अपनी इस लायब्रेरीमें इतना पढ़ा है, जितना एक आम आदमी सारी उम्रमें नहीं पढ़ता। सबसे गहरा सोच-विचार भी उन्होंने इसी जगह किया है। मुझे याद है कि कम-से-कम तीन ऐसे मौक़े थे, जब उन्होंने निहायत अहम (महत्त्वपूर्ण) फ़ैसले इस स्थानकी तनहाईमें किये, और यही एक स्थान है, जहाँ उन्हें तनहाई मिल भी सकती है। लायब्रेरीका लफ़्ज़ गांधीजीने अपने एक दोस्तसे लिया था, जिनकी वह बड़ी इज़्ज़त करते हैं। गांधीजी हमेशा बहुत रससे बयान किया करते हैं कि उनके उन दोस्तका पाखाना इतना साफ़ रहता था कि आदमी बहुत आरामसे उसमें बैठकर पढ़ सकता था। उन्होंने अपने पॉटके पास किताबोंकी एक आलमारी भी लगा रक्खी थी। पिछले इतवारकी प्रार्थनामें गांधीजीने मसूरीके लोगोंसे ग़रीबोंके लिए एक धर्मशाला या मुसाफ़िर-खाना बनवानेकी ज़रूरतका ज़िक्र करते हुए कहा: "ग़रीबोंके पाखाने भी लायब्रेरी या रसोईकी तरह साफ़-सुथरे होने चाहिये। उनमें गन्दगी और बू तो नामको भी न हो। आप शायद समझें कि मैं मज़ाक कर रहा हूँ; लेकिन असलमें बात यह है कि ज़ाती सफ़ाईका और अपने इर्दगिर्दमें हद दरजेकी सफ़ाईका ख़याल समाजी जीवनकी सबसे पहली मंज़िल है। हिन्दुस्तानमें हमने सफ़ाईको नित्य-(दिन-ब-दिनके) धर्ममें जगह दी है। लेकिन यह दावा अभी हमें साबित करना है कि हममें सफ़ाईका वह माद्दा है। मैंने अपनी आँखों देखा है कि हम अपने पवित्र दरियाओंके किनारोंको किस बुरी तरह गन्दा करते हैं। गंगाके पानीको हम पवित्र मानते हैं और समझते हैं कि वह हमारे पाप (गुनाह) धो सकता है। इसका मतलब दर असल यह है कि जिस तरह पानी हमारे शरीरको धो देता है, भक्त प्रार्थना करता है और आशा रखता है कि, उसी तरह दिव्य (ख़ुदाकी बरकतका) पानी उसके दिलको शुद्ध कर देगा। लेकिन अगर आजकी तरह हम अपने पवित्र दरियाओंको ही गन्दा करते रहेंगे, तो उनका पानी हमारी आत्माको कैसे शुद्ध कर सकेगा?"

गांधीजीने सुना था कि मसूरीमें मज़दूरोंके रहने-सहनेकी हालत बहुत बुरी है। वे छोटे-छोटे, गन्दे और बदबूदार कमरोंमें ठुँसे रहते हैं। वे बोले: "इस पर हर किसीको ध्यान देना चाहिये। हम सब एक हैं। अगर हमने अपने घर साफ़ कर लिये और पड़ोसियोंके घरोंकी परवाह न की, तो हमें बीमारी वग़ैराके रूपमें इसकी सज़ा भुगतनी पड़ेगी। पच्छिमवालोंने अपने मुल्कोंको प्लेगके पंजेसे छुड़ा लिया है। मैंने ख़ुद देखा है कि जोहानिसबर्गकी म्युनिसिपल कमेटीने इस तेज़ी और मेहनतसे काम लिया कि फैला हुआ प्लेग फ़ौरन क़ाबूमें आ गया और ऐसा गया कि दुबारा नहीं आया। लेकिन हिन्दुस्तानमें वह बार-बार आया करता है। यहाँ तक कि वह बारहों महीने रहने लगा है। इसका इलाज हमारे अपने हाथमें है। हम अपने जीवनमें तो सफ़ाई और सेहतके उसूल पालें ही, लेकिन साथ-साथ यह भी देखें कि हमारे पड़ोसी भी वैसा ही करें। इस बारेमें ग़फ़लत करना पाप है, जिसकी सज़ा हमें भुगतनी ही पड़ती है। धनी लोग भले अपना धन रक्खें, लेकिन शर्त यह है कि वे ग़रीबोंको न भूलें। वे उनको अपने पैसोंमेंसे हिस्सा दें; और दूसरोंका ख़ून चूसकर पैसा न कमायें।"

गौ-मक्खी

सुकरात अपने-आपको गौमक्खी कहता था। उसके जीवनका ध्येय (मक़सद) था — अमीरों और ताक़तवर लोगोंके इतमीनानको हिलाना और उनकी आत्माको जाग्रत करना। गांधीजीने भी मसूरी के अमीर और शौक़ीन लोगोंकी आत्माको ग़फ़लतकी नींद सोने न दिया। मगर हाँ, इसके साथ-साथ राम-नामका चैन देनेवाला सन्देश भी वे देते रहते थे। दूसरे दिन उन्होंने कहा: "राम-नाम सिर्फ़ चन्द ख़ास आदमियोंके लिए नहीं है, वह सबके लिए है। जो उसका नाम लेता है, वह अपने लिए एक भारी ख़ज़ाना जमा करता जाता है। और यह तो एक ऐसा ख़ज़ाना है, जो कभी खूटता नहीं। जितना इसमेंसे निकालो, उतना बढ़ता ही जाता है। इसका अन्त ही नहीं। और जैसा कि उपनिषद् कहता है: 'पूर्णमेंसे पूर्ण निकालो, तो पूर्ण ही बाक़ी रह जाता है,' वैसे ही राम-नाम तमाम बीमारियोंका एक शर्तिया इलाज है; फिर चाहे वे शारीरिक (जिस्मानी) हों, मानसिक (दिल व दिमाग़की) हों, या आध्यात्मिक (रूहानी)। राम-नाम ईश्वरके कई नामोंमेंसे एक है। सच्ची बात तो यह है कि दुनियामें जितने इनसान हैं, उतने ही ईश्वरके नाम। आप रामकी जगह कृष्ण कहें या ईश्वरके अनगिनत नामोंमेंसे कोई और नाम लें, तो उससे कोई फ़र्क़ न पड़ेगा।" गांधीजीको बचपन ही में राम-नामका मंत्र उनकी आयासे मिला था। उसका ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा: "अँधेरेमें मुझे भूत-प्रेतका डर लगा करता था। मेरी आयाने मुझसे कहा था — 'अगर तुम राम-नाम लोगे, तो तमाम भूत-प्रेत भाग जायँगे।' मैं तो बच्चा ही था, लेकिन आयाकी बात पर मेरी श्रद्धा (यक़ीन) थी। मैंने उसकी सलाह पर पूरा-पूरा अमल किया। इससे मेरा डर भाग गया। अगर एक बच्चेका यह तजरबा है, तो सोचिये कि बड़े आदमियोंके बुद्धि (समझ) और श्रद्धा (यक़ीन) के साथ राम-नाम लेनेसे उन्हें कितना फ़ायदा हो सकता है?"

"लेकिन शर्त यह है कि राम-नाम दिलसे निकले। क्या बुरे विचार आपके मनमें आते हैं? क्या काम (शहवत) या लोभ (लालच) आपको सताते हैं? अगर ऐसा है, तो राम-नाम-जैसा कोई जादू नहीं।" और उन्होंने अपना मतलब एक मिसाल देकर समझाया: "फ़र्ज़ कीजिये कि आपके मनमें यह लालच पैदा होता है कि बग़ैर मेहनत किये, बेईमानीके तरीक़ेसे, आप लाखों कमा लें। लेकिन अगर आपको राम-नाम पर श्रद्धा है, तो आप सोचेंगे कि अपने बीवी-बच्चोंके लिए आप ऐसी दौलत क्यों इकट्ठा करें, जिसे वे शायद उड़ा दें? अच्छे चाल-चलन और अच्छी तालीम व तर-बियतके रूपमें उनके लिए ऐसी विरासत क्यों न छोड़ जायँ, जिससे वे ईमानदारी और महेनतके साथ अपनी रोटी कमा सकें? आप यह सब सोचते तो हैं, लेकिन कर नहीं पाते। मगर राम-नामका निरंतर जाप चलता रहे, तो एक दिन वह आपके कण्ठसे हृदय तक

www.vinoba.in

उतर आयेगा, और वह रामबाण चीज़ साबित होगा। वह आपके सब भ्रम मिटा देगा; आपके झूठे मोह और अज्ञानको छुड़ा देगा। तब आप समझ जायँगे कि आप कितने पागल थे, जो अपने बाल-बच्चोंके लिए करोड़ोंकी इच्छा करते थे, बजाय इसके कि उन्हें राम-नामका वह खज़ाना देते, जिसकी क़ीमत कोई पा नहीं सकता; जो हमें भटकने नहीं देता, जो मुक्तिदाता है। आप खुशीसे फूले नहीं समायेंगे। अपने बाल-बच्चोंसे और अपनी पत्नीसे कहेंगे: 'मैं करोड़ों कमाने गया था, मगर वह कमाना तो भूल गया। दूसरे करोड़ लाया हूँ'। आपकी पत्नी पूछेगी: 'कहाँ है वह हीरा, जरा देखूँ तो'! जवाबमें आपकी आँखें हँसेंगी, मुँह हँसेगा, आहिस्तासे आप जवाब देंगे: "जो करोड़ोंका पति है, उसे हृदयमें रखकर आया हूँ। तुम भी चैनसे रहोगी, मैं भी चैनसे रहूँगा'।"

पापकी गठरी

शिमलेकी तरह मसूरीमें भी गांधीजीने कई दफ़ा लोगोंके पापकी गठरीको झटका दिया। उनसे रिक्शा खींचनेवालों और बोझ उठानेवालोंके बारेमें कहा। सबको उनकी फ़िक्र होनी चाहिये। वे अमीरोंकी अमीराना ज़िन्दगी मुमकिन बनाते हैं। लेकिन लोग उनके कन्धों पर बैठते हैं। कभी कोई उनसे यह भी पूछता है कि कहाँ रहते हो? क्या खाते हो? तुम्हारे पास रहनेको घर है? गांधीजीने सुना था कि ये बेचारे कबूतरखानों जैसे छोटे-छोटे कमरोंमें रहते हैं, जिनमें पूरी रोशनी नहीं जाती; खुली हवा नहीं आती। एक कमरेमें कितने आदमी रहते हैं, सो कहते भी इसलिए डरते हैं कि कहीं कोई उन्हें वहाँसे निकाल न दे; सज़ा न हो जाय। उनके कपड़े गन्दे होते हैं। शायद उनके पास बदलनेके लिए कपड़े ही नहीं होते। शायद उनकी हालत भी बिहारकी उस औरतकी-सी है, जिससे कस्तूरबाने पूछा था कि वह अपने कपड़े क्यों नहीं धोती? और उसने कहा था: 'आप जाकर गांधीजीसे कह दें कि वे मुझे बदलनेके लिए कपड़े दें, ताकि मैं उन्हें धो सकूँ। मेरे पास यह एक ही साड़ी है। विश्वास न हो, तो चलकर सन्दूक देख लें। यह साड़ी जब तक बिलकुल फट नहीं जायगी, मैं इसे उतार न सकूँगी। धोऊँ, तो नंगी रहूँ न?' जिनको खुदाने ज़रूरतसे ज्यादा दिया है, उनका फ़र्ज़ हो जाता है कि वे बाक़ी रक़म ग़रीबों पर खर्च करें। गांधीजीको बताया गया था कि अब सूबेमें कांग्रेसी वज़ारत है। वह मज़दूरोंके लिए हर जगह मकान बनवायेगी। गांधीजीने कहा: "अगर वह एसा करे, तो अच्छा ही है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि रिक्शा पर चढ़नेवाले अपना फ़र्ज़ भूल जायँ।" डॉक्टरोंने गांधीजीको बताया था कि रिक्शावाले बेचारे ४-५ साल तक रिक्शा खींचनेके बाद जल्द ही दिल या फेफड़ोंकी बीमारीसे मर जाते हैं। रहनेको कोई अच्छी जगह उन्हें नहीं दी जाती, मज़दूरी भी काफ़ी नहीं मिलती, पहननेको काफ़ी कपड़े नहीं, शक्तिसे ज्यादा काम करना पड़ता है। लोग यह सब कुछ कैसे बरदाश्त करते हैं?

भूल और उसका प्रायश्चित्त (कफ़्फ़ारा)

दूसरोंके लिए जो बिलकुल मामूली चीज़ें होती हैं, सत्याग्रहके शीशेमें कई दफ़ा वे निहायत बड़ी दिखाई देने लगती हैं। बोझ उठानेवालों और रिक्शा-कुलियोंके बारेमें सिर्फ़ सुनी-सुनाई बातोंसे गांधीजीको तसल्ली न हुई। इसलिए उन्होंने अपने एक साथीको उन लोगोंके घर भेजा, ताकि वहाँ जाकर वे उनके रहन-सहनकी हालतको अपनी आँखों देखकर आयें। अपनी रिपोर्ट देते हुए उन भाईने गांधीजीसे वह बात भी कह दी, जो कुछ रिक्शा-कुलियोंने उनसे कही थी। कहा गया था कि गन्दे कपड़ोंके कारण उन्हें प्रार्थनाकी जगह घुसने नहीं दिया गया। इस बुनियाद पर गांधीजीने प्रार्थनामें लोगोंसे दो शब्द कहे। जलसेका इन्तज़ाम करनेवालोंमेंसे एकको इस बातका बहुत दुःख हुआ। बादमें गांधीजीको पता लगा कि जो बात उन्होंने सुनी थी, उसे यक़ीनी तौर पर सच्चा नहीं कहा जा सकता। गांधीजीको लगा कि बग़ैर जाँच-पड़ताल किये बातको मान लेने और उसके आधार पर आम जलसेमें टीका या नुक़्ताचीनी करनेसे वे सत्याग्रहीके धर्मसे गिर गये हैं। दूसरे दिन प्रार्थनाके बाद अपनी तक़रीर (भाषण)में सबके सामने अपनी ग़लती क़बूल करते हुए गांधीजीने बताया कि हमारे लिए यह कितना ज़रूरी है कि पहले तो हम ज़रूरतके बग़ैर कभी बोलें नहीं, और जो बोलें उसके एक-एक लफ़्ज़ पर पहले निहायत अच्छी तरहसे सोच-विचार लें। एक सत्याग्रहीको कोई बात झटसे नहीं मान लेनी चाहिये। सत्याग्रहमें ग़फ़लतकी कोई सफ़ाई नहीं है। संस्कृतका एक श्लोक है कि बुद्धि (अक़्ल)का पहला लक्षण (निशानी) यह है कि कोई चीज़ शुरू ही न की जाय; और अगर शुरू कर दी जाय, तो उसे अच्छी तरह पार उतारा जाय। सबसे अच्छा तो यह होता कि मैं अनजाँची बातका ज़िक्र ही न करता। लेकिन एक दफ़ा ज़िक्र कर बैठा, तो अब ज़रूरी है कि उसका अच्छा अन्त लानेके लिए सबके सामने खुले तौर पर क़बूल करूँ कि तहक़ीक़ात करने पर पता लगा है कि यह इल्ज़ाम साबित नहीं किया जा सकता।" फिर गांधीजीने लोगोंको अपने तीन गुरुओंके बारेमें बताया। ये हैं, तीन जापानी बन्दर। इनका एक खिलौना वे हमेशा डेस्क पर अपने सामने रखते हैं। वे बोले: "जापानमें तीन बन्दरोंकी एक बहुत बड़ी मूर्ति है। एक मुँह पर हाथ रखे है, दूसरा कानों पर, और तीसरा आँखों पर। पहला कह रहा है कि जब तक बिलकुल ज़रूरी न हो, बोलो नहीं; और जब बोलना ही पड़े, तो बोलनेसे पहले हरएक शब्दको अच्छी तरहसे तोलो। दूसरा कह रहा है, कान बन्द रखो। झूठमूठ कोई कुछ भी बोलता हो, गाली बकता हो, उससे तुम्हें क्या? अपना समय (वक़्त) ख्वामख्वाह निकम्मी बातें सुननेमें क्यों गँवाओ? तीसरा कहता है, आँखें बन्द रखो। तुम हर चीज़को देखकर क्या करोगे? उससे तुम्हारी आँखोंमें मैल छा जायगा। तुम अन्धे हो जाओगे। तुम्हारी आँखें विषयों (ख्वाहिशों)के पीछे भटकती फिरेंगी। इसलिए जब आदमी सड़क पर चले, तो क़ुदरतकी शान देखे। वरना गान्धारीकी तरह ज़मीन की तरफ़ देखकर चले। इससे वह रास्तेके रोड़ोंसे बच जायगा।" गांधीजी जहाँ भी जाते हैं, अपने इन तीनों बन्दर गुरुओंको अपने साथ ले जाते हैं। उन्होंने लोगोंको सलाह दी कि वे भी उनका सबक़ अपने मनमें बिठा लें।

एक और सबक़ (पाठ)

इत्तिफ़ाक़से पिछले गुरुवार (जुमेरात)को गांधीजी प्रार्थनामें कुछ मिनट देरसे पहुँच सके। यह बात उनकी प्रार्थनाके बादकी तक़रीरका विषय या मज़मून बन गई। एक महाराजा मुलाक़ातको आये थे। उन्होंने गांधीजीको मुक़र्रर वक़्तसे ज्यादा रोक लिया। नतीजा यह हुआ कि जब वे प्रार्थनाकी जगह पहुँचे, तब प्रार्थना शुरू हो चुकी थी। प्रार्थनाके बाद भाषण करते हुए उन्होंने देरसे आनेकी माफ़ी माँगी और कहा: "कनु गांधीने मेरा इन्तज़ार किये बग़ैर प्रार्थना शुरू करके अच्छा किया। वह तो मेरा स्वभाव जानते हैं न? जब मैंने प्रार्थनाकी मधुर आवाज़ सुनी, तो मुझे अच्छा लगा। यही हमारा क़ानून हमेशा होना चाहिये। कोई कितना ही बड़ा आदमी क्यों न आनेवाला हो, उसके लिए हमारी प्रार्थनाका समय रुक नहीं सकता। ईश्वरकी घड़ी कभी रुकती नहीं; किसीने पूछती नहीं। वह शुरू कब हुई, कोई जानता नहीं। असलमें ईश्वर और उसकी घड़ी दोनों कभी शुरू नहीं हुए। वे हमेशा थे, हमेशा रहेंगे। ईश्वर कोई मनुष्य नहीं है। वही क़ानून है, वही क़ानून बनानेवाला है। उसे किसीने देखा नहीं। उसका चमत्कार क्या है, कोई जानते नहीं। बड़े-बड़ोंने उसकी व्याख्या (तारीफ़) करनेकी कोशिश की है। लेकिन वेदसे बढ़कर किसीने नहीं की। वेदोंके लेखक वेदव्यासने बड़ी कोशिश की। अपने अन्तर (अन्दर)में पैठकर देखा, फिर भी कण्ठसे 'नेति-नेति' ('यह नहीं, यह नहीं') ही निकला। उसे कोई चीज़ नहीं हिलाती। लेकिन उसकी मरज़ीके बिना पेड़का एक पत्ता भी नहीं हिलता। न कभी उसका आरम्भ (शुरू) था, न अन्त (खातमा) है। जो चीज़ पैदा

www.vinoba.in

होती है, उसका नाश भी होता है। सूरज, चन्द्रमा और पृथ्वी, इन सबका एक दिन नाश होना है, चाहे वह अनगिनत बरसोंके बाद ही हो। सिर्फ़ ईश्वर अमर (दवामी) है। उसका कभी नाश नहीं होता। इनसान उसका बयान करनेके लिए लफ़्ज़ कहाँसे लाये? उसकी घड़ी कभी रुकती नहीं। कोई उसकी प्रार्थनाके समयको कैसे चूक सकता है?" गांधीजीने आगे कहा: "अगर कनु गांधी मेरा इन्तज़ार करते, तो मुझे दुःख होता। प्लेटफार्म (मंच) तक आते हुए मैंने प्रार्थनामें जो ख़लल डाला, उसके लिए मैं बहुत शरमिन्दा हूँ। जब दूसरे देरसे आते हैं, तो मुझे बहुत बुरा लगता है। मैं सोचता हूँ, वे किनारे पर क्यों नहीं खड़े हो जाते? क्यों बीचमें घुसे आते हैं, और प्रार्थनामें ख़लल डालते हैं? मैं चाहता था कि बाहर ही ठहर जाऊँ, लेकिन मुझे पता था कि आप लोग मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे। मेरे न पहुँचनेसे आप फ़िक्रमें पड़ जायँगे। इसलिए मैंने प्लेटफार्म तक आनेकी हिम्मत की और यहाँ बैठ गया। लेकिन अन्दरसे मैं काँप रहा था। मुझे मोटरने धोखा नहीं दिया; पर मैं ही अपने मुलाक़ातियोंसे पीछा न छुड़ा सका।"

गांधीजीने कहा कि सब लोगोंको इस बातसे सबक़ लेना चाहिये। अगर वे प्रार्थनाके वक़्तका ख़याल रक्खेंगे, तो अपनी इस आदतकी झलक उनके हर काममें दिखाई देगी। वे बोले: "जो आदमी बाक़ायदा और व्यवस्थित ढंगसे काम करता है, उसको कभी थकान महसूस नहीं होती। ज़्यादा काम आदमीको नहीं मारता, सिर्फ़ बेक़ायदगी और अव्यवस्था मारती है।"

नई दिल्ली, १०-६-'४६

('हरिजन'से) प्यारेलाल

चोर बाज़ार और पेट्रोल

एक भाई यों लिखते हैं:

"वक़्तकी तंगीकी वजहसे काम करनेवालोंको तय किया हुआ काम पूरा करनेके लिए अक्सर मोटरके ज़रिये लम्बे सफ़र करने पड़ते हैं। रेलके रास्ते वक़्तसे पहुँचना मुश्किल होने पर उन्हें ऐसा करना पड़ जाता है। लेकिन चूँकि मोटरके लिए काफ़ी पेट्रोल कण्ट्रोलकी दरसे नहीं मिलता, इसलिए ऐसे सफ़रोंमें चोर बाज़ारसे खरीदा गया पेट्रोल बरता जाता है। यह पेट्रोल या तो दूसरोंकी मारफ़त खरीदा जाता है या टैक्सीवालेसे यह तय कर लिया जाता है कि वह चोर बाज़ारसे या और कहींसे पेट्रोल खरीद ले और कहा जाता है कि उसे मीलके हिसाबसे अमुक किराया दिया जायगा। (चोर बाज़ारसे खरीदे जानेवाले पेट्रोलकी क़ीमतका अन्दाज़ा लगाकर ही यह 'माइलेज' तय किया जाता है।)

"क्या चोर बाज़ारोंमें खरीदे गये पेट्रोलसे चलनेवाली मोटरोंमें इस तरह सफ़र करना मुनासिब है?

"मुमकिन है कि ऐसे पेट्रोलका इस्तेमाल न करनेसे सफ़र बहुत कम हो जायगा और उसका 'ज़ाहिरा' नुक़सान भी दिखाई पड़ेगा। लेकिन मेरे खयालमें इसका दूसरा कोई रास्ता नहीं।

"तो क्या मेरा इस तरह सोचना सही है? अगर सही नहीं है, तो इसमें दोष (नुक्स) क्या है? प्रार्थना है कि मुनासिब रहनुमाई कीजियेगा।"

मुझे तो लगता है कि जो स्वयंसेवक सचाईको मानता है या न मानते हुए भी सोच-समझकर सेवा करता है, वह इस तरह मोटरका इस्तेमाल नहीं कर सकता। ऐसा करनेवालेके लिए कहा यह जायगा कि वह जानते हुए भी चोर बाज़ारको बढ़ावा देता है। इससे तो नुक़सान ही होगा। साथ ही, मैं तो इस खयालका भी हूँ कि सेवाके बहाने जहाँ-तहाँ मोटरका उपयोग करनेमें दोष है।

नई दिल्ली, ९-६-'४६

('हरिजनबन्धु'से) मोहनदास करमचंद गांधी

यह काफ़ी नहीं

गुजरातमें हरिजनोंको आम कुओंसे पानी नहीं लेने दिया जाता। वे दूसरी समाजी सहूलियतोंका भी फ़ायदा नहीं उठा सकते। कुछ दिन पहले श्री हेमन्तकुमारने एक खत लिखकर गांधीजीका ध्यान इस तरफ़ खींचा था। गांधीजीने गुजरातियोंसे अपील की थी कि उन्हें अपने इस गुनाहका प्रायश्चित्त (कफ़्फ़ारा) करना चाहिये। इससे कई जगह सवर्ण हिन्दुओंके दिलोंमें कुछ हल-चल पैदा हुई है। हरिजन-आश्रम, साबरमतीके श्री परीक्षितलाल अपने खतमें गांधीजीको लिखते हैं कि उन्होंने कुछ दिन पहले गुजरातके कुछ ज़िलोंका दौरा किया था। उसमें उन्होंने जो कुछ देखा-सुना वह यों है:

"सूरत ज़िलेके दौरेमें, जो मैंने हालमें किया, मुझे दो ऐसी जगहें देखनेका मौक़ा मिला, जहाँ गाँववालोंने हरिजनोंको बड़ी ख़ुशीसे गाँवके कुएँ इस्तेमाल करनेकी इजाज़त दी थी। ये दोनों वाक़ये क़ौमी हफ़्तेमें हुए। और, दोनों गाँवोंमें पब्लिक जलसा किया गया, जिसमें हरिजन कुटुम्बोंको गाँवके कुओं पर ले जाया गया। इन दोनों गाँवोंमें हरिजन आबादीका ज़्यादा हिस्सा कोली लोग हैं।

"हरिजनोंको गाँवके कुओं पर ले जानेके बाद चोर्यासी ताल्लुक़ेके बुड़िया गाँवमें कुछ लोगोंने हरिजनोंके साथ बैठकर खाना खाया। इस गाँवमें हरिजनोंके लिए एक अलग कुआँ है, इसलिए वे आम कुओं पर, जहाँ उन्हें अभी-अभी पानी भरनेकी इजाज़त मिली है, जानेसे झिझकते हैं। लेकिन मुझे पता लगा है कि उन्हें इस बातसे तसल्ली है कि गाँवके ज़्यादातर लोग उनके साथ पूरी-पूरी हमदर्दी रखते हैं। गाँवमें एक और पब्लिक जलसा किया गया। उसमें कोली बहनें भी शामिल हुईं और हमने उनका अभिनन्दन किया।

"दूसरे गाँवका नाम, जो इसी ताल्लुक़ेमें है, हजीरा है। सूरत ज़िलेमें समन्दरके किनारे यह एक अच्छी जगह है, जहाँ लोग सेहतके लिए आया करते हैं। सन् '४२के आन्दोलन (तहरीक़)के वक़्तसे गाँवमें वहाँके नौजवानोंने कामयाबीके साथ एक बाल-मन्दिर खोल रक्खा है। चरखा-संघ एक बुनाई शाला (स्कूल) भी चलाता है। इसके अलावा, बड़ोंकी तालीमके लिए भी वर्ग (जमाअत) चलते हैं। इस गाँवमें सिर्फ़ एक हरिजन कुटुम्ब है। गाँववालोंने इस कुटुम्बकी एक भंगिनके माथे पर मुबारक तिलक लगाया और उसे गाँवके आम कुएँसे पानी भरने दिया गया। वह बेचारी इतनी ग़रीब थी कि उसके पास रस्सी तक न थी। यह देख गाँवकी एक सवर्ण बहनने उसे रस्सी दी। बादमें पूछनेसे पता लगा है कि अब हरिजन बिना किसी रुकावटके गाँवके आम कुएँका इस्तेमाल कर सकते हैं।

"खेड़ा ज़िलेके वड़दला गाँवमें भी वहाँके नौजवानोंने क़ौमी हफ़्तेमें हरिजनोंको उनके हक़ दिलानेके लिए एक कार्यक्रम (प्रोग्राम) रक्खा, और ज़िलेके काम करनेवालोंको इस मौक़े पर बुलाया। लेकिन यह पाया गया कि वहाँके लोगोंका वह हिस्सा जो रस्मोंका पक्का था, इस सुधारके लिए तैयार न था। इस पर नौजवानोंकी तरफ़से बोलनेवालेने कहा कि जब तक हरिजनोंको आम कुओंसे पानी भरनेकी इजाज़त न मिलेगी, तब तक वह ख़ुद (पाटीदार होते हुए भी) सिर्फ़ हरिजनोंके कुएँसे ही पानी भरेगा। इस इरादेमें उसकी बीवी भी उसके साथ हो गई। गाँवके कुछ और नौजवानोंने भी ऐसा करनेकी ख्वाहिश ज़ाहिर की। इस बारेमें जो पब्लिक जलसा हुआ था, उसमें हरिजन कुएँका पानी पीया गया। इससे पुराने खयालोंके लोगोंका विरोध (मुख़ालिफ़त) नर्म पड़ गया और गाँवके कुएँसे हरिजनोंको पानी भरनेकी इजाज़त मिल गई। लेकिन हरिजनोंने अभी तक इस हक़का फ़ायदा उठानेकी हिम्मत नहीं की।"

www.vinoba.in

जो कुछ हुआ है, अच्छा है। लेकिन अगर गुजरात आज़ादीकी लड़ाईमें सबसे आगे रहना चाहता है, तो उसके लिए यह काफ़ी नहीं है। सारे गुजरातमें एक ऐसा ज़बरदस्त आन्दोलन शुरू होना चाहिये, जिसका मकसद (हेतु) एक मुकर्रर वक़्तके अन्दर हरिजनोंकी तमाम दिक़्क़तें दूर कर देना हो। हरिजनोंकी आज़ादी क़यामत तक इन्तज़ार नहीं कर सकती। वह उन्हें अभी, और इसी वक़्त, मिलनी चाहिये। अगर हमने अपने समाजके इस सबसे मुफ़ीद हिस्सेको उसके लाज़िमी हक़ न दिये, तो मुल्ककी आज़ादी भी एक निकम्मी चीज़ बन जायगी।

मसूरी, ७-६-'४६

('हरिजन'से) प्यारेलाल

हरिजनसेवक

१६ जून १९४६

अनजाना या अज्ञात

कुछ पण्डित उसे अनजाना कहते हैं, कुछ कहते हैं, जाना नहीं जा सकता। दूसरे उसे 'नेति-नेति' (यह नहीं, यह नहीं) कहते हैं। इस वक़्त हमारे मतलबके लिए 'अनजाना' काफ़ी है।

कल (९ जून) जब प्रार्थनामें मैंने लोगोंसे दो शब्द कहे, तो बस यही कह सका कि जितनी शक्ति हमें वह अज्ञात (अनजाना) दे सकता है, और जहाँ तक वह रास्ता दिखा सकता है, उसके लिए हम उससे प्रार्थना करें, और उसी पर भरोसा रक्खें। हिन्दुस्तानके सामने आज एक बड़ा नाटक खेला जा रहा है। उसमें हरएक पार्टीके रास्तेमें बड़ी मुश्किलें हैं। उन्हें इसी 'अनजाने' पर भरोसा रखना चाहिये। वह इनसानकी अक़्लको चक्करमें डाल सकता है और उसकी नाचीज़ तजवीज़ोंको एक पलमें उलट-पुलट कर सकता है। ब्रिटिश पार्टी इस 'अनजाने' ईश्वर पर विश्वास रखनेका दावा करती है। मुस्लिम लीगका भी यही कहना है। वह बड़े जोशसे 'अल्ला-हो-अकबर'के नारे लगाती है। कांग्रेसके पास इस क़िस्मका कोई एक नारा नहीं हो सकता। पर अगर वह सारे हिन्दुस्तानकी नुमाइन्दा बनना चाहती है, तो वह ईश्वर पर विश्वास रखनेवाले करोड़ोंकी भी नुमाइन्दा है, चाहे वे ख़ुदाके घरके किसी भी हिस्सेके रहनेवाले हों।

मैं हमेशा आशावादी रहा हूँ। फिर भी यह लिखते वक़्त मैं पक्की तरहसे नहीं कह सकता कि कम-से-कम सियासी (राजनीतिक) बोलीमें यह चीज़ महफ़ूज़ (सुरक्षित) है। इसलिए मैं यही कह सकता हूँ कि अगर सब पार्टियोंकी पूरी-पूरी और सच्ची कोशिशके होते हुए भी ऐसी चीज़ हो गई जो ग़ैरमहफ़ूज़ (असुरक्षित) है, तो मैं उनसे कहूँगा कि वे भी मेरे साथ मिलकर कहें कि जो हुआ, सो अच्छा हुआ। इस ग़ैरमहफ़ूज़ चीज़में ही हमारी हिफ़ाज़त थी। अगर हम सब ईश्वरके बच्चे हैं, और हैं, चाहे हम मानें या न मानें, तो हमारा फ़र्ज़ हो जाता है कि जो कुछ भी हो, उससे घबराहटमें न पड़ें। और उत्साह (जोश) और आत्म-विश्वाससे (अपने पर भरोसा रखते हुए) अगले क़दमकी तैयारी करें, चाहे वह क़दम कुछ भी हो। शर्त सिर्फ़ यह है कि हरएक पार्टी ईमानदारीके साथ सारे हिन्दुस्तानकी भलाईकी पूरी कोशिश करे, क्योंकि हमारी बाज़ी वही है, दूसरी नहीं।

मसूरी, १०-६-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

उर्दू, दोनोंकी भाषा?

एक विद्वान् (आलिम) हिन्दी प्रेमी लिखते हैं:

१ "जिस प्रकार (तरह) आप उद्योग (मेहनत) कर रहे हैं कि भारतवासी, विशेष (खास) कर हिन्दू — क्योंकि आपके दैनिक सम्पर्क (रोज़मर्रा मेलजोल)में हिन्दू ही अधिक (ज़्यादा) आते हैं — उर्दू सीख लें, उसी प्रकार क्या कोई सज्जन मुसलमानों को भी हिन्दी सिखानेका उद्योग कर रहे हैं? यदि (अगर) ऐसा नहीं है, तो आप ही के उद्योग के कारण उर्दू हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी भाषा हो जायगी और हिन्दी केवल हिन्दुओंकी भाषा रह जायगी। क्या इसमें हिन्दीकी सेवा होगी?

२ "आपके यहाँ के लेखोंमें हिन्दी शब्दों (लफ़्ज़ों) के उर्दू पर्याय (बराबर के लफ़्ज़) कोष्ठ (ब्रैकेट) में दिये जाते हैं, परन्तु (पर) उर्दू शब्दोंके हिन्दी पर्याय नहीं दिये होते। क्या यह हिन्दी भाषियों (बोलनेवालों) को ज़बरदस्ती उर्दू पढ़ाने की चेष्टा (कोशिश) नहीं है?

३ "आपके प्रकाशनों में फ़ारसी, अरबी शब्दोंकी भरमार रहती है। क्या आपके विचारमें ये ऐसे शब्द हैं, जिन्हें भारतकी साधारण (आम) जनता समझती है? उदाहरण (मिसाल) के लिए — 'अदब', 'आदाब', 'एतक़ाद'।

४ "यदि हिन्दुस्तानी एक भाषा है, तो आपको शिक्षा-योजना (तालीमकी स्कीम)की पाठ्य पुस्तकों (रीडरों) के हिन्दी-उर्दू संस्करणों (एडीशनों) में इतना अन्तर (फ़र्क़) क्यों रखना पड़ता है?

५ "मेरा नम्र निवेदन है (बड़ी आजिज़ीसे गुज़ारिश है) कि अभी तक जो लाखों दक्षिणी हिन्दी सीखते हैं, उनमें से अधिकांश (ज़्यादा हिस्सा) उर्दू लिपिके डरसे दोनोंमें से एक लिपि भी न सीखेंगे और हिन्दी-प्रचारका आज तकका कार्य (काम) मल्यिा-मेट हो जायगा।"

१. कोशिश तो की जा रही है कि जो उर्दू ही जानते हैं, वे हिन्दी रूप सीख लें। हिन्दी जाननेवाले उर्दू रूप सीख लें। यह बात सच है कि मुझे हिन्दी जाननेवाले हिन्दू ही ज़्यादा मिलते हैं। इससे मुझे कोई कष्ट नहीं। हिन्दू हिन्दी भूलनेवाले नहीं हैं। उर्दूके ज्ञानसे उनकी हिन्दी बढ़ेगी ही। भारतवर्षमें जो लोग हैं, वे हिन्दू हों या मुसलमान, उनमें ज़्यादा हिस्सा तो अपने प्रान्त (सूबे) की ही भाषा जाननेवाले हैं। वे हिन्दी रूप तो भूल ही नहीं सकते, क्योंकि हिन्दीमें और प्रान्तीय भाषाओंमें अधिक शब्द संस्कृतके ही हैं। और माना कि मेरे प्रयत्नका नतीजा यह आवे कि सब उर्दू रूप ही सीख जायँ, तो भी मुझे उसका न तो कोई भय (डर) है, न वैसी कोई आशा ही। जो स्वाभाविक होगा, वही होनेवाला है। दोनों रूपोंको मिलानेके साहसको मैं सब पहलुओंसे अच्छा ही मानता हूँ।

२. मैंने हिन्दुस्तानी-प्रचारके सब प्रकाशन पढ़े नहीं हैं। अगर उनमें हिन्दी शब्दोंके उर्दू शब्द भी दिये हैं, तो उसमें फ़ायदा ही है। उसका अर्थ (मतलब) तो यह होगा कि पुस्तकके लेखककी नज़रमें हिन्दीके उर्दू शब्द पाठक लोग नहीं जानते होंगे। उर्दूके हिन्दी नहीं दिये जाते हैं, तो अर्थ यह हुआ कि वे शब्द हिन्दीमें चालू हो गये हैं। समझमें नहीं आता कि ऐसी सीधी बातमें भी विद्वान् लेखक शक क्यों करते हैं? ऐसा शक लाना विद्याका भूषण नहीं है।

३. यह बात सही नहीं है। अगर सही भी हो, तो उसमें हानि (नुक़सान) क्या हो सकती है? भाषामें ऐसे शब्द दाख़िल होनेसे भाषाका गौरव (शान) बढ़ेगा। नॉर्मन हमलेके बाद अंग्रेज़ीमें फ्रेन्च भाषाकी मारफ़त जो शब्द दाख़िल हुए उससे अंग्रेज़ी भाषाका ज़ोर बढ़ा, कम नहीं

www.vinoba.in

हुआ। जितना आडम्बर था या अतिशयता थी, वह निकल गई। जो उदाहरण (नमूने) लेखक ने दिये हैं, उन्हें उत्तर (शुमाल) के सभी हिन्दी प्रेमी जानते हैं। उन्होंने हिन्दी बोलीमें अपनी जगह बना ली है। दक्षिणकी हिन्दीके लिए वे नये हैं सही। उसके लिए उनके संस्कृत शब्द देनेकी ज़रूरत रहेगी। और ऐसी मदद दी भी जाती है। बात यह है कि हिन्दुस्तानी-प्रचारमें न एकका द्वेष (नफ़रत) है, न दूसरीका पक्षपात (तरफ़दारी)। दोनों रूप मौजूद हैं और रहेंगे। उसमें आपत्ति न होनी चाहिये। अगर दोनों पक्षों (फ़रीक़ों) में द्वेषभाव (नफ़रतका जज़्बा) ही रहा, तो हिन्दुस्तानी नहीं बनेगी। ऐसा हुआ, तो वह हिन्दुस्तानके लिए बुरा होगा।

४. हिन्दुस्तानी एक ज़मानेमें थी। अब तो बहुत देखनेमें नहीं आती। इसीलिए यत्न हो रहा है कि जो भाषा दोनोंके मेलरूप हिन्दुस्तानी शकलमें थी, वह अब भी बने और बढ़े। इससे न हिन्दीवाले दुःख मानें, न उर्दूवाले। हिन्दी और उर्दू दोनों बहनें हैं। बहनोंके मिलनेसे क्या नुक़सान होनेवाला है? इस संधि-युगमें दोनों रूपमें हिन्दुस्तानी-प्रचारकी पुस्तकोंमें अन्तर रहता है, तो कोई ताज्जुबकी बात नहीं है।

५. मेरा अनुभव लेखकसे उलटा है। दोनों लिपि सीखनेके डर से किसीने दोनोंको छोड़ दिया हो, ऐसा एक भी नमूना मेरे ध्यानमें नहीं आया है। मुझे ऐसा होनेका कोई डर भी नहीं है।

लेखक से मेरी विनय है कि वे अपनी संकुचित दृष्टि (तंग नज़री) छोड़ दें।

मसूरी, ३-६-'४६ मोहनदास करमचंद गांधी

उर्दू 'हरिजन'का मज़ाक

भाई जीवणजीने मुझको हिन्दी और उर्दू अख़बारोंसे कड़ी टीकाके कुछ नमूने भेजे हैं। सबमें काफ़ी मज़ाक उड़ाया गया है। हिन्दीवाले कहते हैं, उर्दू 'हरिजन'में चुन-चुनकर उर्दू शब्द भरे जाते हैं; उर्दूवाले कहते हैं, ऐसे संस्कृत शब्द भरे हैं, जिन्हें मुसलमान नहीं समझते। मुझे तो दोनों तरहकी टीकायें अच्छी लगती हैं। हरिजन 'सेवक' क्यों, 'ख़िदमतगार' क्यों नहीं? 'सम्पादक' क्यों, 'एडीटर' या 'मुदीर' क्यों नहीं? उर्दूवाले मानते हैं कि हिन्दुस्तानी और उर्दू एक ही हैं; हिन्दीवाले मानते हैं कि लिपि उर्दू होने पर भी हिन्दुस्तानी हिन्दी ही है, और ऐसा ही है, तो मैं हारकर उर्दू लिपि छोड़ दूँगा। मैं हार जाऊँ, ऐसी आशा तो निराशा ही होनी चाहिये। और, न हिन्दी, हिन्दुस्तानी है, न उर्दू, हिन्दुस्तानी। हिन्दुस्तानी बीचकी बोली है। यह सही है कि आज उसका चलन नहीं है। अगर अख़बारवाले और दूसरे टीका करनेवाले धीरज रक्खेंगे, तो दोनों देखेंगे कि वे हिन्दुस्तानी आसानीसे समझ सकते हैं। मैं क़बूल करता हूँ कि आज हम सब हरिजनवाले तैयार नहीं हो पाये हैं, मनसूबा तैयार होनेका है। आज 'हरिजनसेवक'की हिन्दुस्तानी खिचड़ी-सी लगेगी, भद्दी लगेगी, उसके लिए माफ़ करें। अगर ईश्वर मुझे ज़िन्दा रक्खेगा, तो इसी अख़बारको पढ़नेवाले देखेंगे कि हिन्दुस्तानी बोली वैसी ही मीठी होगी, जैसी हिन्दी या उर्दू है। आज दोनोंके बीच कुछ होड़-सी मालूम पड़ती है। कल दोनों बहनें बन जायँगी और दोनोंका सहारा लेकर हिन्दुस्तानी ऐसी बोली बनेगी, जो करोड़ोंको पूरा काम देगी और कम-से-कम भाषाका झगड़ा मिट जायगा। दरमियान टीकाकार ग़लतियाँ दिखाते रहें। उन्हें मुहब्बतके साथ समझनेसे 'हरिजनसेवक'की भाषामें दुरुस्ती होती रहेगी।

मसूरी, ५-६-'४६ मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियाँ

आज़ादीके विधानकी भाषा

एक सज्जन लिखते हैं:

"आप यह जानते हैं कि संसारके सभी देशोंमें जो विधान बने हैं, वे उन देशोंकी भाषाओंमें ही बने हैं। फ्रान्स, जर्मनी, आयर्लैण्ड, ईजिप्त, जापान वग़ैराकी मिसालें हमारे सामने हैं।

"हमारे देशका जो विधान, विधान बनानेवाली सभा बनायेगी, वह देशकी भाषामें ही बनना चाहिये। इसके लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानी उपयुक्त भाषा है। हमारी कठिनाई यह है कि अदालतोंके, जैसे, हाईकोर्टों और फेडरल कोर्टोंके जजोंमें, शायद ही कोई हिन्दी जाननेवाला हो। इनके लिए विधानका अंग्रेज़ी अनुवाद होगा, जिससे ये काम ले सकेंगे। कुछ दिनों बाद ये हिन्दुस्तानीका ज्ञान प्राप्त कर ही लेंगे। यदि आप 'हरिजन'में इस विषय पर प्रकाश डालेंगे, तो मुझे और दूसरोंको भी इससे लाभ होगा।

"दूसरा प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि जो विधान-निर्मात्री-सभा बनाई जाय उसके सदस्य इतनी हिन्दुस्तानी जाननेवाले हों कि सभामें होनेवाली बातचीतके सारको समझ सकें।"

मुझे तो यह ख़त अच्छा लगता है। हमारा विधान अंग्रेज़ीमें क्यों हो? लोगोंके समझनेकी बोली तो हिन्दुस्तानकी ही होनी चाहिये। मेरी निगाहमें वह हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। करोड़ों हिन्दुस्तानी उसको आसानीसे पढ़ सकेंगे, और साथ-ही-साथ लोगों पर इस कामका असर अच्छा होगा। आजकी हालतमें यह ठीक है कि विधानका तरजुमा विधान बनानेवाली सभाकी तरफ़से अंग्रेज़ीमें भी निकले। यों तो प्रान्तोंकी भाषाओंमें भी उसका तरजुमा करना ही होगा।

दूसरी बात भी है तो ठीक, लेकिन उस पर अमल तो अलग-अलग एसेम्ब्लियोंके चुनाव करनेवाले सदस्य ही करेंगे। इस दरख़्वास्त पर अमल तभी हो सकता है, जब वे हिन्दुस्तानी समझनेवालोंको ही चुनें।

मसूरी, ४-६-'४६

सही है, लेकिन नया नहीं

लखनऊके मौलवी हामीदुल्ला 'अफ़सर' साहब मुझसे मसूरीमें मिले, और अपने दो परचे मुझे दे गये। दोनोंका मतलब एक ही है कि मदरसोंमें हाईस्कूल तक सब लड़कों-लड़कियोंके लिए हिन्दी और उर्दू बोलियाँ और दोनों लिपियाँ लाज़िमी हों। मुझे तो यह बात बहुत पसन्द है। मेरा निजी यत्न तो हमेशासे यही रहा है। एक ज़माना था, जब मौलाना हसरत मोहानी और बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन इसकी कोशिश कर रहे थे, लेकिन हम कामयाब नहीं हुए। फिर भी न तो मैंने अपना विश्वास छोड़ा और न यत्न ही छोड़ा। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा बनी। इसलिए मौलवी साहब जो दरख़्वास्त करते हैं, वह मेरे लिए नई नहीं। अगर यू० पी०की सरकार सबकी रायसे हिन्दी और उर्दू बोलीको हाईस्कूल तक लाज़िमी कर सके, तो वह उसका एक बड़ा काम होगा। मैं तो कहूँगा कि जिस सूबेकी ज़बान हिन्दी या उर्दू है, वहाँ दोनों बोलियाँ लाज़िमी हों। मुझे इसमें कोई शक नहीं कि अगर ऐसा क़दम उठाया गया, तो दोनों बोलियोंके मिलनसे हिन्दुस्तानी क़ुदरती तौरपर चल निकलेगी और हिन्दी-उर्दूका झगड़ा हमेशाके लिए बन्द हो जायगा। दूसरा फ़ायदा यह होगा कि हाईस्कूल तककी पढ़ाई हिन्दी-उर्दूमें बड़ी आसानीसे होगी।

मसूरी, ६-६-'४६

दिलकी बातका दिखावा क्यों?

एक सज्जन लिखते हैं कि मैं उनको हरिजन ज़ाहिर कर दूँ। वे सेन्ससमें भी अपना नाम सवर्णोंमेंसे निकलवा डालेंगे। मैं कहता हूँ कि सब हिन्दू अतिशूद्र बन जायँ। इसी परसे इन ब्राह्मण भाईने मुझे

www.vinoba.in

ऊपरके मतलबका खत लिखा है। लेकिन जो बात दिलको है, उसे दिखाना क्या? हाँ, यह ठीक है कि हरएक हिन्दूको अपने हर बरतावसे यह साबित करना है कि वह हरिजन यानी भंगी बन गया है। इसलिए वह भंगियोंसे मिलकर रहेगा, उनके जीवनमें पूरा हिस्सा लेगा। हो सके, तो किसी भंगीके साथ रहेगा या किसी भंगीको अपने साथ रक्खेगा, और अपने बाल-बच्चोंकी शादियाँ हरिजनोंके साथ करेगा। और जब कोई पूछेगा, तो कहेगा कि वह अपनी इच्छासे हरिजन बन गया है। सेन्ससमें वह अपना नाम हरिजनोंमें या भंगियोंमें देगा। मगर ऐसा करते हुए वह कभी हरिजनोंके हक़ नहीं माँगेगा। मसलन्, वह हरिजन वोटरोंमें अपना नाम नहीं लिखायेगा। मतलब यह कि वह हरिजनोंके धर्मका पालन करेगा, मगर उनके अधिकारकी आशा नहीं रक्खेगा।

नई दिल्ली, ९-६-'४६

आशारिया या दशांश पद्धति पर सिक्के बनाना

ऐसा लगता है कि इस मज़मून पर श्री किशोरलालभाईके लेखके आखिरी पैरेमें मैंने भूलसे यह छपने दिया कि इस मज़मून पर एक और लेख छपेगा। उसमें बताया जायगा कि अगर आशारिया (दशांश पद्धति) पर सिक्के बनाने ही हों, तो वह तजवीज़ किस तरह चलाई जाय, जिससे ग़रीबोंको नुक़सान न हो। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि दर असल इस सुधार पर ध्यानसे सोच-विचार करनेका अभी मौक़ा नहीं है। मेरे मनमें यह बात बिलकुल साफ़ है कि जब तक मुल्कमें आज़ाद हुकूमत क़ायम न हो जाय, तब तक आशारिया पर सिक्के बनानेकी किसी तजवीज़ पर, चाहे वह कितनी ही अच्छी क्यों न हो, खयाल नहीं करना चाहिये। इसलिए मेरी रायमें आज इस सुधारकी किसी भी तजवीज़को छापनेका मौक़ा नहीं। मुल्कके आला दिमाग़ अभी कई ऐसे मसलोंमें लगे हुए हैं, जिनका हल होना ज़रूरी है। मुझे यक़ीन है कि इस क़िस्मका क़ानून पास करनेसे पहले मुल्क आरामसे उस अच्छी घड़ीका इन्तज़ार कर सकता है, जब इस तजवीज़ पर ग़ौर करके इसे अच्छी तरह समझा जा सके। अगर इंग्लैण्डने इस बारेमें बरसों इन्तज़ार किया है, और अभी भी कर रहा है, तो हिन्दुस्तानके करोड़ों भूखे मर्द और औरतों पर इस क़िस्मका सिक्कोंमें क्रांतिकारी (इनक़िलाबअंगेज़) सुधार एकाएक क्यों लादा जाय? और वह भी आम लोगोंको उसकी बुराई-भलाई समझानेसे पहले! यह सुधार ऐसा नहीं है कि इसके खिलाफ़ कुछ न कहा जा सके। मुल्कमें जो अनाज आज मौजूद है, उसमें इस सुधारसे एक दाना भी बढ़नेवाला नहीं। १ रुपयेके १०० सेण्ट हों या ६४ पैसे, इस बातका फ़ैसला किसी ज्यादा अच्छे मौक़ेका इन्तज़ार कर सकता है। लोकशाहीके लिए यह ज़रूरी है कि क़ानून पास करनेसे पहले हरएक चीज़ धीरजसे लोगोंको समझाई जाय। इसलिए मेरा इरादा था कि इस ऐलानको वापस ले लूँ, ताकि कोई ऐसी उम्मीद न बँधे, जिसे मैं पूरा करना नहीं चाहता।

नई दिल्ली, ९-६-'४६

('हरिजन'से) मो० क० गांधी

भूल सुधार

ता० १९-५-'४६के 'हरिजनसेवक'में 'ज़बरदस्ती और ज़ुल्म' नामके लेखमें पृष्ठ १४२के चौथे पैरेकी दूसरी लाइनमें मवेशियों और दूसरे चौपायोंके लिए नमककी ज़रूरतवाली चर्चामें **१८ पौण्डके** बजाय **१६ पौण्ड** पढ़िये।

उसी पैरेकी ७वीं लाइनमें **१३ करोड़ ७३ लाख** मनके बदले सिर्फ़ **१३ करोड़** मन पढ़िये।

www.vinoba.in

राजा और चमार

काश्मीरके राजा चन्द्रापीड़ने त्रिभुवनस्वामी नामका एक विष्णु-मन्दिर बनवाना शुरू किया। लेकिन मन्दिरके लिए घेरी गई ज़मीनमें किसी चमारकी झोंपड़ी भी पड़ती थी। उसने वह ज़मीन देनेसे इनकार कर दिया। चमारको मुँहमाँगे दाम दिये जाने लगे। मगर वह टस-से-मस न हुआ। इस पर हाकिमोंने बात चन्द्रापीड़ तक पहुँचाई। राजाने कहा: "इसमें क़सूर आप ही का है, चमारका नहीं। पहले उससे पूछे बिना आपको काम शुरू ही न करना चाहिये था। अब या तो मन्दिरकी हद छोटी कीजिये, या उसे किसी दूसरी जगह बनाइये। दूसरेकी ज़मीन छीनकर कौन अपने नामको बट्टा लगायेगा? हमारा काम है कि हम सत् और असत्को — अच्छे और बुरेको — पहचानें। अगर हम ही अधर्म करने लगेंगे, तो फिर न्यायके रास्ते कौन चलेगा?"

इस तरह बातचीत हो रही थी कि इतनेमें चमारका भेजा एक आदमी आया और उसने राजासे कहा: "मालिक, चमारू आपके दर्शन करना चाहता है।" राजाने कहा: "उसे आने दो।"

चमार आया। चन्द्रापीड़ने उससे पूछा: "भाई, हम पुण्यका (सवाबका) काम कर रहे हैं, तू इसमें रुकावट क्यों डालता है? तुझे ज़रूरत हो तो तेरे इस घरसे कहीं अच्छा घर तुझे बनवा दूँगा, वरना तुझे तेरा मुँहमाँगा धन दूँगा।" चमारने कहा: "देव, कहाँ आप, और कहाँ मैं? फिर भी मुझे बिनतीके रूपमें दो शब्द आपसे कहने हैं। आप चाहे कङ्कण, कड़े और नौलखा हार पहनें और हमारे पास चाहे फूटी कौड़ी भी न हो, तो भी अपनी देहके लिए जितनी ममता आपको है, उतनी ही हमें भी है। और जिस तरह आपके लिए आपका यह राजमहल है, उसी तरह मेरे लिए मेरी झोंपड़ी है। जबसे पैदा हुआ हूँ, तभीसे माँकी तरह वह मेरे सुख-दुःखकी साक्षी (गवाह) है, इसलिए कोई उसे छीन ले और मैं देखा करूँ, यह कैसे हो सकता है? आदमीके लिए अपना घर छोड़ना कितना कठिन हो जाता है, सो तो ऐसा कोई देव या राजा ही बता सकता है, जिसे अपना स्वर्ग या राज छोड़ देना पड़ा हो। फिर भी अगर आप मेरे घर पधारें और मुझसे मेरी झोंपड़ी माँगे, तो भले आदमियोंकी रीतसे मैं अपनी झोंपड़ी आपको दे दूँगा।"

इस पर चन्द्रापीड़ चमारके घर गया और उसे बहुत-सा धन देकर उसकी झोंपड़ी मन्दिरके लिए ले ली।*

('हरिजनबन्धु'से) **वालजी गोविन्दजी देशाई**

* कल्हणकी राजतरंगिणी ४, ५५-७७, और रमेशचन्द्र दत्तके बड़े भाई जोगेशचन्द्रके अंग्रेजी तरजुमेसे।

नई किताबें

	मूल्य	डाकखर्च
ईशु ख़िस्त — (किशोरलाल घ० मशरूवाला)	०-१४-०	०-१-०
रचनात्मक कार्यक्रम — उसका रहस्य और स्थान (नई और सुधरी हुई आवृत्ति) (गांधीजी)	०-६-०	०-१-०
गो-सेवा — (गांधीजी)	१-८-०	०-५-०
एक धर्मयुद्ध — (महादेवभाई हरिभाई देसाई)	०-८-०	०-२-०
हमारी बा — उनकी जीवन-कस्तूरी (वनमाला परीख और सुशीला नय्यर)	२-०-०	०-६-०
मरुकुंज — क्षयरोगका निवारण (मथुरादास त्रिकमजी)	१-४-०	०-५-०

सावधानी

"आप सत्य और अहिंसा पर इतना ज़ोर देते हैं, इसीलिए मैं आपकी तरफ़ इतनी दूरसे खिंचा चला आया हूँ। लेकिन मैंने यह महसूस किया है कि अहिंसक बननेके लिए सिर्फ़ सत्य और अहिंसाकी इच्छा (ख्वाहिश) काफ़ी नहीं। इसलिए मुझे लगता कि सिर्फ़ अहिंसाका प्रचार करना काफ़ी नहीं होगा। कोई ऐसा रास्ता चाहिये, जिससे लोग फिर नये सिरेसे अपने-आपको नई शकलमें ढाल सकें।

"सिर्फ़ अहिंसाके उसूल पर मोहित हो जाने और अहिंसक होनेकी इच्छा करनेसे आदमी सच्चा अहिंसक (अदम-तशद्दुदवाला) नहीं बन सकता। हमारे मनकी अनजानी तहें आसानीसे अक़्लको कहना नहीं मानतीं, और जब मनका जाना हुआ हिस्सा एक खयालमें डूब ही जाय, तो भी हो सकता है कि उसकी अनजाने मन पर कुछ असर न हो। उस पर जल्दीसे असर न होनेके कारण हैं, हमारी छिपी ख्वाहिशें और डर, जो अपनेसे उल्टे विचारोंको बेदार (जाग्रत) होने नहीं देते। जब तक अनजाना मन साफ़ न किया जाय और छिपी रुकावटें हटाई न जायँ, तब तक मनुष्यका असली रूप, जो कि अक़्लमन्द और रहमदिल (दयालु) है, बाहर नहीं आ सकता।

"इसलिए यह ज़रूरी है कि जो सच्चे दिलसे अहिंसाकी तलाशमें हैं, उनको बताया जाय कि किस तरह मनके अन्दर सत्य और अहिंसाके रास्तेमें छिपी रुकावटोंको दूर किया जाय, ताकि सत्य और अहिंसा दिलमें अपने-आप टिकाऊ और असरकारी रूपमें जम जायँ।

"प्रार्थना और उद्योग (दस्तकारी) वग़ैरा जैसी बाहरी चीज़ें सचाई और रहमदिलीको पानेका कोई अच्छा तरीक़ा नहीं। मनुष्यजातिका सारा इतिहास (तवारीख़) इस बातकी गवाही देता है। ठीक दिशा (तरफ़)में कोशिश करने पर ही इनसान अपने-आपको नये सिरेसे ढाल सकता है। नेक इरादे ही काफ़ी नहीं; ठीक तरीक़ोंकी भी ज़रूरत होती है। ख़ुशक़िस्मतीसे ऐसे तरीक़े मालूम हैं। आज़माकर देखा जा चुका है कि वे ठीक, क़ाबिल और मनुष्यके मनसे हमरंग (एक रंगवाले) हैं। बेशक, इन पर अमल बहुत कम करते हैं। मेरा मतलब सावधानीके तरीक़ेसे है, जिसकी महात्मा बुद्धने बहुत तारीफ़ की है और कहा है कि कोई तरीक़ा इससे ज़्यादा कारगर (काम आनेवाला) नहीं। महात्मा बुद्ध बहुत संजीदा (गंभीर) और कम बोलनेवाले (मितभाषी) मनुष्य थे। फिर भी वे यहाँ तक कहते हैं कि इस तरीक़ेसे आदमी सात दिनमें कमालके दरजे (सम्पूर्णता) तक पहुँच सकता है।

"शायद आपने सावधानीके अमल (साधना) के बारेमें न पढ़ा हो, इसलिए थोड़ेमें उसका हाल लिखता हूँ।

"जो आदमी इस साधनाको अपनाये, उसे चाहिये कि हमेशा चीज़ोंको ध्यानसे देखता रहे, आँख और कान खुले रक्खे, और अपने खयालों और जज़्बों (विचारों और भावनाओं) से अच्छी तरह वाक़िफ़ रहे। यह भी जाने कि उसका शरीर उन्हें किस तरह ज़ाहिर (प्रकट) करता है। मनुष्यको चाहिये कि वह छानबीनकी आदत रक्खे, और जाग्रत और चौकन्ना रहे। लेकिन यह ज़रूरी है कि उसकी जानकारी पर उसके निज़ी खयालों और विचारोंका रंग न चढ़े। उसे चाहिये कि वह अलग-थलग रहे, न फैसला दे, न किसीको बुरा-भला कहे। सिर्फ़ सचेत रहे, और कुछ नहीं। अगर हम अपने साँस लेनेको ध्यानसे देखें, तो यह बात झट समझमें आ जायगी। क्योंकि इस क्रिया या अमलके साथ कोई इच्छायें और डर लगे हुए नहीं होते, इसलिए आप इसे वग़ैर लगावके देख सकते हैं।

"अगर एक मनुष्य लगातार इस चीज़को बड़े ध्यानसे देखने लग जाय कि उसका मन और उसके जज़्बात (भावनायें) किस तरह काम करते हैं, और किस तरह वे शरीर (जिस्म)के ज़रिये ज़ाहिर होते हैं, तो बड़ी जल्दी उसमें परिवर्तन (अन्दरूनी तबदीली) होना शुरू हो जाता है। मन बिलकुल साफ़ और शफ़्फ़ाफ़ (पारदर्शक) हो जाता है, मानो बिलकुल खाली हो गया हो। यों, जाना मन साफ़ हुआ कि उसमें अनजाने मनकी घुण्डियाँ नज़र आने लगती हैं। आगाहीकी रोशनीमें वे पिघलकर खत्म हो जाती हैं, और उनकी जगह अनजाने मनकी और ज़्यादा नीचेकी, और, और भी पहुँचसे बाहरकी तहोंको भरने और इस तरह खत्म होनेका मौक़ा मिलता है।

"अगर यह सारी क्रिया (अमल) ठीक ढंगसे की जाय, तो इसमें कोई मेहनत नहीं पड़ती। बेहद ख़ुशी होती है और ऐसा लगता है, मानों सारे बन्धनोंसे छुटकारा मिल गया हो। दिन-ब-दिन आदमी ज़्यादा अक़्लमन्द और रहमदिल होता जाता है, और उसकी अक़्ल और रहमदिली कोई उसके अपने ऊपर ज़बरदस्ती लादी हुई चीज़ नहीं होती, बल्कि ख़ुद-ब-ख़ुद फूटती है। इस लिए ये ख़ूबियाँ टिकाऊ होती हैं, क्योंकि मनकी अनजानी तहमें कोई ऐसी चीज़ नहीं होती, जो इनके रास्तेमें रुकावट डाले।

"यह साबित करनेके लिए कि अगले ज़मानेके लोग सावधानीके तरीक़ेसे अच्छी तरह वाक़िफ़ थे, मैंने जान-बूझकर पच्छिमकी और हिन्दुस्तानकी मानी हुई किताबोंके हवाले नहीं दिये। यह तरीक़ा इतना सादा है, और इसकी ख़ूबी इतनी आसानीसे आदमी अपने-आप आज़मा सकता है कि इसको सनदकी ज़रूरत नहीं। आप आसानीसे इसको अपने ऊपर आज़मा सकते हैं। एक हफ़्तेमें आपको यक़ीन हो जायगा कि महात्मा बुद्धने हमें अपने-आपको नये ढंगसे हमेशाके लिए सत्यरूप बनानेकी ग़रज़से एक ऐसा कारगर साधन दे दिया है, जिसकी कोई मिसाल नहीं।

"जब तक हम व्यक्तिगतरूप या इनफिरादी हैसियतसे सच्चे और अहिंसक न हो जायँ, तब तक दुनियामें सत्य और अहिंसाकी उम्मीद फ़ज़ूल है। इसलिए यह निहायत ज़रूरी है कि हम ख़ुद सच्चे और अहिंसक बनें। इसके लिए एक ऐसा रास्ता है, जिसकी बड़ोंने तारीफ़ की है और जिसे बहुतसे लोगोंने आज़माकर देख भी लिया है कि वह रास्ता कारगर, सीधा, सच्चा और सही है। आप दोस्तोंकी ऐसी छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें इसे बार-बार आज़माइये, जो इस पर पूरे ध्यानसे चलें और बादमें अपना-अपना तजरबा एक-दूसरेसे मिलायें। नतीजे आप अपने-आप देख लेंगे। इसकी दुरुस्ती उतनी ही अच्छी तरहसे जाँची जा सकती है जितनी कि एक साय न्सके प्रयोग की।

"एक और पहलू भी देखनेका है। आपको बहुतसे ईमानदार और मुस्तैद (तत्पर) लोग मिले होंगे, जो इस बुनियाद पर झूठ और बेरहमीकी हिमायत करते हैं कि उनसे काम ज़्यादा अच्छा और जल्दी निकलता है। उनके तरीक़े नफ़रत और बेवक़ूफ़ीके या दलीलके रूपमें होते हैं। अगर आप उनको सावधानी सिखा देंगे, तो वे इस नफ़रत और बेवक़ूफ़ीकी जड़ें अपने-आप देख लेंगे। मूढ़ (कुन्द-ज़िहन) और बेरहम आदमीको भी सावधानीका रास्ता अक़्लमन्द और रहमदिल बना देगा, क्योंकि वह मूढ़ता (कुन्द-ज़िहनी) और बेरहमीकी जड़ ही काट देगा। और वे हैं तृष्णा (ख्वाहिशों) और उससे पैदा हुए डर।

"मेहरबानी करके इस सन्देश (पैग़ाम)की क़ीमतका फ़ैसला सन्देश लानेवालेकी क़ीमतसे न कीजिये। यह सन्देश बड़े भद्दे तरीक़ेसे आप तक पहुँचाया जा रहा है, फिर भी आपके कामके लिए बहुत अहमियत (महत्त्व) रखता है।"

www.vinoba.in

ऊपरका सन्देश श्री फ्राइडमनने लिखकर भेजा है, जिनको जनता ज़्यादातर श्री भारतानन्दके नामसे जानती है। जो भी इसकी क़ीमत हो, मैंने इसको यहाँ नक़ल कर दिया है। मैं इस पर मोहित नहीं हो गया हूँ। बहुतसे दूसरे इलाजोंकी तरह इसने भी मुझ पर कोई ख़ास असर नहीं किया। अगर यह ७ दिनमें हो जानेवाला काम है, तो क्या वजह है कि आज दुनियामें इसके इतने कम गवाह पाये जाते हैं? मददके रूपमें यह तरीक़ा आम इस्तेमाल होता है। और दूसरे इलाजोंकी तरह इसका भी अपना स्थान (जगह) है, चाहे इसको सावधानी कहो, जाग्रति कहो या ध्यान कहो। यह प्रार्थना, माला या दूसरी बाहरी साधना या तपस्याकी जगह नहीं ले सकता, उनके साथ-साथ चल सकता है। अगर दिखावेके लिए न की जायँ, तो इन साधनाओंकी अपनी जगह है। असलमें प्रार्थना तो सिर्फ़ भीतरकी बात है।

जिन्होंने राम-नामका तिलस्म ढूँढ़ पाया, वे सावधान तो थे ही। पर उन्होंने अनुभव (तजरबा) किया कि सत्य और अहिंसा पर अमल करनेके लिए जितनी दवाइयाँ हैं, उनमेंसे सबसे अच्छी दवाई राम-नाम है।

मसूरी, ४-६-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

मसूरीमें

मसूरीमें प्रार्थनाके जलसोंमें मैंने यह सुझाया कि वहाँके शौक़ीन लोगोंको चाहिये कि वे अपने शहरके ग़रीबोंका भी ख़याल करें। उनके रहन-सहनको आरामदेह, साफ़ और तन्दुरुस्तीके उसूलोंके मुताबिक़ बनायें। एक ऐसी जगह भी बनायें, जहाँ ग़रीब-से-ग़रीब लोग भी आ सकें और पहाड़ी आबहवाका फ़ायदा उठा सकें। दोनों सुझाव उन्होंने बड़े जोश (उत्साह)से पकड़ लिये हैं। धर्मशाला या मुसाफ़िर-खानेके ख़यालको अमलमें लानेके लिए वा-असर आदमियोंकी एक कमेटी बना दी गई है। इस नोटमें तो यही कहना चाहता हूँ कि सबसे ज़रूरी चीज़ यह है कि आजसे काम करनेवालोंकी एक कमेटी या कोई एक काम करनेवाला चुन लिया जाय, जो मेहमानघरको अच्छी तरहसे चलाना अपना धन्धा बना ले। क्योंकि जगह मुफ़्त होगी, इसलिए यह फ़ैसला करना कि किन मेहमानोंको रहनेकी जगह देनी चाहिये, और किनको नहीं, कोई आसान काम नहीं होगा। इस बातका ध्यान रखना होगा कि जो इतना किराया दे सकें कि गुज़ारेकी दूसरी जगह उन्हें मिल सके, उनको वहाँ जगह न दी जाय। सिर्फ़ ऐसे लोगोंको लेना होगा जो बिलकुल किराया नहीं दे सकते। अगर जगह बिलकुल साफ़ रखनी है, तो कुछ नियम (क़ानून) बनाने पड़ेंगे और उनका सख्तीसे पालन करवाना होगा। इसमें मेहमानोंका ही फ़ायदा है। लेकिन रहनेवालोंके साथ बहुत अच्छी तरहसे पेश आना होगा। उन्हें कभी यह महसूस न हो कि ग़रीबी जुर्म है। तीसरे दरजेका हरएक मुसाफ़िर जानता है कि रेलके डिब्बोंमें और रेलवे स्टेशनों पर ग़रीबोंसे कितना बुरा सलूक किया जाता है। इस ग़रीब मुल्ककी पुरानी किताबोंके मुताबिक़ ग़रीबीमें एक शान रही है। यहाँ पब्लिक जगहों पर लोग पैसे भी दे जाते हैं और उनका अपमान (बेइज़्ज़ती) भी होता है। ऐसा लगता है, मानो उन्हें अपमानकी भी क़ीमत देनी पड़ रही हो! कितने अफ़सोसकी बात है! बदक़िस्मतीसे ऐसी हवामें हमें यह मेहमानघर बनाना है। कमेटीको अभीसे मेहमानघरको चलानेवाले किसी ऐसे आदमीकी तलाश होनी चाहिये, जिसमें इस कामके लिए ज़रूरी ख़ूबियाँ मौजूद हों; और इसमें शक नहीं कि इसके लिए बहुत बड़ी ख़ूबियोंकी ज़रूरत है। अगर ऐसा आदमी मिल गया, तो यह तजवीज़ तमाम पहाड़ी मुक़ामोंके लिए नमूना बन जायगी।

मसूरी, ८-६-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

एक-एक पाई बचाइये

मैंने देखा है कि एसेम्ब्लियोंके मेम्बर अपने निजी कामोंके लिए भी निहायत क़ीमती कुन्दाकारी किया हुआ काग़ज़ इस्तेमाल करते हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, दफ़्तरोंका लिखनेका सामान वहाँसे बाहर नहीं ले जाया जा सकता। दफ़्तरोंमें भी ख़ानगी कामों के लिए — जैसे, दोस्तोंको या रिश्तेदारोंको लिखना या एसेम्ब्लीके मेम्बरका पब्लिक के किसी आदमीको पब्लिकके कामके सिवा किसी दूसरे कामके लिए लिखना — इसके उपयोग (इस्तेमाल)की इजाज़त नहीं। जहाँ तक मैं जानता हूँ दुनियामें हर जगह इस चीज़की मनाही है। लेकिन इस ग़रीब मुल्कके लिए तो मैं और भी आगे जाऊँगा। लिखनेके जिस सामानका मैंने ज़िक्र किया है, वह हमारे मुल्कके लिए बहुत महँगा है। अंग्रेज़ दुनियाके सबसे खर्चीले मुल्कके लोग हैं। वे यह भी जानते हैं कि वे हम पर अपनी जितनी धाक बैठा सकें, उतना ही उनका फ़ायदा है। इसलिए उन्होंने दफ़्तरोंके लिए बहुत क़ीमती-क़ीमती और बड़े-बड़े मकान बनवाये, जिनकी देखभालके लिए नौकरों और उनके सहारे जीनेवाले चापलूसोंकी एक फ़ौजकी ज़रूरत होती है। अगर हमने उनके तरीक़ों और आदतोंकी नक़ल की, तो हम-आप तबाह हो जायँगे; और मुल्कको भी अपने साथ ले डूबेंगे। अंग्रेज़ोंने हमें जीता था, इसलिए उनकी बुराइयाँ बरदाश्त की गईं। लेकिन अगर वे ही बुराइयाँ हममें हुईं, तो बरदाश्त न की जायँगी। मुल्कमें आज काग़ज़की भी कमी है। इसलिए मेरी राय है कि ये तमाम खर्चीली आदतें हम छोड़ दें। हमें ग्राम-उद्योगका काग़ज़ इस्तेमाल करना चाहिये, जिस पर उर्दू और नागरीमें नाम, ठिकाना वग़ैरा सादी तरहसे छपा हो। कुन्दाकारी किये हुए काग़ज़को, जो पहलेका छपा हुआ है, काटकर आसानीसे ज़्यादा अच्छे काममें लाया जा सकता है। हम किफ़ायत करनेके बहाने उसका इस्तेमाल न करें। यक़ीनी तौर पर ग्राम-उद्योगका माल तब तक इन्तज़ार नहीं कर सकता, जब तक कि क़ीमती और बहुत मुमकिन है, विदेशी माल ख़त्म न हो जाय। जनताकी सरकारको चाहिये कि वह आते ही आम पसन्दके काम करे और सस्ती आदतें अपनाये।

मसूरी, ८-६-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

विषय-सूची

			पृष्ठ
हफ़्तेवार ख़त	...	प्यारेलाल	१७७
चोर बाज़ार और पेट्रोल	...	गांधीजी	१७९
यह काफ़ी नहीं	...	प्यारेलाल	१७९
अनजाना या अज्ञात	...	गांधीजी	१८०
उर्दू, दोनोंकी भाषा?	...	गांधीजी	१८०
उर्दू 'हरिजन'का मज़ाक	...	गांधीजी	१८१
राजा और चमार	...	वालजी गोविन्दजी देशाई	१८२
सावधानी	...	गांधीजी	१८३
मसूरीमें	...	गांधीजी	१८४
एक-एक पाई बचाइये	...	गांधीजी	१८४
टिप्पणी —			
आज़ादीके विधानकी भाषा	...	मो० क० गांधी	१८१
सही है, लेकिन नया नहीं	...	मो० क० गांधी	१८१
दिलकी बातका दिखावा क्यों?	...	मो० क० गांधी	१८२
आशारिया या दशांश पद्धति पर सिक्का बनाना	...	मो० क० गांधी	१८२

www.vinoba.in